# दिव्या कहानी में प्रतिबिंबित सामाजिक असमानताएँ - एक मूल्यांकन

## Divya Kahani Me Pratibimbit Samajik Asamantayen – Ek Mulyankan

**Dr.Babitha.B.M. Associate Professor and HOD of Hindi, S S M R V College, Bangalore.**

## पीठिका:

दिव्या इतिहास नहीं है ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में एक काल्पनिक कथा है। इसके पात्र, कथानक और अन्य योजनाएं कल्पना प्रसूत हैं। इसके चरित्र, वातावरण और परिस्थितियों को यशपाल ने इतिहास की छाप देकर खड़ा किया है। इसमें यशपाल किसी एक या अनेक का ऐतिहासकि जीवनवृत्त नहीं लिखते, वे तो समाजवादी दृष्टिकोण लेकर इतिहास के एक कालखंड की छानबीन भर करते हैं।

यशपाल ने दिव्या की भूमिका में लिखा हैः "दिव्या इतिहास नहीं, ऐतिहासिक कल्पना मात्र है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर व्यक्ति और समाज की प्रवृत्ति और गति का चित्र है। लेखक ने कला के अनुराग से काल्पनिक चित्र में ऐतिहासिक वातावरण के आधार पर यथार्थ का रंग देने का प्रयत्न किया है।" इस दृष्टिकोण के कारण यशपाल अपने पात्रों और घटनाओं के अंकण में कहीं बंधन में नहीं होते हैं। वे अपने उद्देश्य के अनुरूप पात्र और कथा स्थितियाँ रचते हैं। उन्होंने इतिहास का उपयोग सिर्फ वातावरण निर्माण के क्रम में किया है। इससे पूरी रचना एक ऐतिहासिक समय संदर्भ में उभरती है और सच की तरह मारक असर पैदा करती है।

## ऐतिहासिक समयरेखा

डॉ. भगवतशरण उपाध्याय 'दिव्या' के ऐतिहासिक दृष्टि से असफल कृति मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय इतिहास में बुद्ध/बौद्ध काल नाम से कोई युग नहीं है जबकि यशपाल ने इसे बौद्ध काल की कथा कहा है। डा0 उपाध्याय की दूसरी आपत्ति अंगरखा को लेकर है। उनके अनुसार ईसापूर्व भारत में अंगरखा का प्रयोग नहीं किया जाता था। उपन्यास में यशपाल ने अपने पात्रों द्वारा अंगरखा का प्रयोग करवाया है। उनकी तीसरी आपत्ति यह है कि ग्रीकों के फादर जीयस को यशपाल ने देवी जीयस लिखा हैं। इन आपत्तियों के संबंध में वस्तुस्थिति यह है कि यशपाल दिव्या नाम से उपन्यास लिख रहे थें इतिहास नहीं। ऐतिहासक उपन्यास में ऐसी भूले क्षम्य होती है। यशपाल तो इतिहास का आधार लेकर सिर्फ यह बताना चाहते थे कि अतीत हमेशा गौरवमय नहीं होता।

'दिव्या' की कथा में रोमैंटिकता मोह, यथार्थ, द्वन्द्व एवं तनाव है। एक ओर भावना है तो दूसरी ओर है विवेकानुशासित कर्त्तव्य। पूरी कथा द्वन्द और तनाव के ताने बाने से हीं बुनी हुयी है। यशपाल मार्क्सवादी हैं। वे मार्क्सवाद को रूढ़ि के रूप में नहीं अपनाते इसलिए उनमें कट्टरता नहीं मिलती। प्रेम और सौन्दर्य चित्रण को लेकर भी उनमें अन्य मार्क्सवादियों की तरह धिक्कार का भाव नहीं है। 'दिव्या' में उन्होंने दिव्या और छाया के प्रणय चित्रों में वासना का अतिरेक नहीं श्रृंगारिक शौष्ठव दिखाया है। यशपाल का यर्थावादी विवेक भावना के बहाव में भी सजग रहता है। शांति प्रिय द्विवेदी ने यशपाल की द्वन्दात्मकता को स्पष्ट करते हुए लिखा है-'' यशपाल की आत्मा छायावाद की है किंतु जीवन की वास्तविकता

ने उन्हें यथार्थवादी बना दिया है। उनके दृष्टिकोण की उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि वह सुचिंतित और संतुलित है। अन्य प्रगतिशील लेखकों की अपेक्षा यशपाल की यह विशेषता है कि वे देश काल का ध्यान रखते हैं।'' यशपाल में नारी मुक्ति का भाव छायावाद का प्रभाव हो सकता है लेकिन नारी मुक्ति के लिए उनमें सामाजिक-आर्थिक समानता एवं स्वतंत्रता के भूमि की तलाश मार्क्सवादी/यथार्थवादी प्रभाव है।

## समाज की असमानताओं का प्रतिबिंब

'दिव्या' में आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक और नैतिक सवालों से रचनाकार सीधे टकराता है। इन टकरावों के लिए वह समाज के सबसे शोषित पीड़ित वर्ग दास वर्ग और नारी वर्ग को कथा के केन्द्र में रखता है। कथा की नायिका है दिव्या वह स्वयं दास वर्ग और नारी वर्ग दोनों का प्रतिनिधित्व करती है। वह धर्मस्थ देव शर्मा की परपौत्री है। वह सुख और वैभव में पली है। वह दास पुत्र पृथुसेन के प्रति अनुरक्त हो जाती है। मानव हृदय जाति, कुल, धर्म की सीमाएँ नहीं मानता लेकिन दिव्या को क्या मालुम था कि दास पुत्र से प्रेम करना ही उसके लिए सबसे बड़ा अपराध हो जाएगा। पृथुसेन जब केन्द्रस के आक्रमण से बचाव के लिए सैन्य अभियान पर जाने वाला है तभी दिव्या पृथुसेन पर समर्पित हो जाती है। बाद में उसका गर्भ उसके लिए समस्या बन जाता है। उसे अब महसुस होता है कि नारी प्रेम करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। उसका वर्णाश्रम धर्म उसे अभयदान नहीं दे पाता। जो दिव्या वैभव में पली है वही परिस्थितियों का शिकार बनकर क्रय-विक्रय की वस्तु हो जाती है। उसे महसूस होता है कि नारी चाहे गृहणी हो या दासी वह स्वतंत्र नहीं है वह तो सिर्फ भोग की वस्तु है।

तत्कालीन समाज में दासों और दासियों की स्थिति सोचनीय थी। दिव्या दासी छाया का दुःख स्वयं दासी बनकर अनुभव करती है। दासियों का जीवन नारकीय था। दास बनाने वाले दासियों से पशु जैसा व्यवहार करते थे। दासों की अपनी आकांक्षा का कोई महत्व नहीं था। दिव्या दास व्यवसायी प्रतूल के हाथों 20 रूपये में भूधर के हाथों बेच दी जाती है। भूधर उसे मथुरापुरी के चक्रधर के हाथों बेचता है। चक्रधर ब्राह्मण है लेकिन ब्राह्मण कुल की ही एक श्रेष्ठ कन्या के शोषण से उसे परहेज नहीं है। दिव्या चक्रधर के बेटे को अपने छाती का दूध पिलाती है और जिससे अपना बेटा सूखता जाता है। वह दास जीवन से छुटकारा पाने के लिए नदी में कूदती है और अपने बेटे को हमेशा के लिए खो देती है। प्रतूल दासों से अमानवीय व्यवहार करता है। पाटलिपुत्र में उसके घर पर चार दासियाँ है, जो प्रति 18 मास बाद संतान पैदा करती हैं। प्रतूल दासियों को न बेचकर उनकी संतानों को बेचता है। दासियाँ अभ्यस्थ हो जाने के कारण संतान वियोग का सह लेती है।

## सामाजिक विभाजन

दिव्या का समाज सामन्ती समाज है। वह द्विज और अद्विज दो वर्गों में बँटा है। उस समाज में व्यक्ति के महत्व और हैसियत की पहचान उसके जन्म और कूल से होती है। द्विज अपनी श्रेष्ठता के अहंकार से ऐंठे हुए थे। मिलिन्द से परास्त होकर उसकी अधिनता स्वीकार करने के बावजूद द्विजों की ऐंठ गयी नहीं थी। केन्द्रस के आक्रमण का मुकाबला करने की क्षमता किसी द्विज में नहीं थी। लेकिन उनमें मिथ्या अकड़ थी। दास पुत्र पृथुसेन ने केन्द्रस को परास्त किया । लेकिन द्विज उसकी श्रेष्ठता मानने को तैयार नहीं थें। द्विजों के अहंकार का मुर्तिमान रूप है रूद्रधीर। वह छल का सहारा लेकर पृथुसेन को अपदस्त कर देता है। अब तय है कि वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का पुर्नरूद्धार होगा और इसके नीचे दासत्व और शोषण की पक्की व्यवस्था होगी।

**महिला उत्पीड़न**

नारी वर्ग प्रेम करने और प्रेम में लज्जा, संकोच करने के लिए भी स्वतंत्र नहीं थी। छाया अपनी प्रेमी बाहुल से प्रेम नहीं कर सकती क्योंकि वह दासी है। दासी को लज्जा कर सकुचाने का भी अधिकार नहीं हैं। मालकीन अमिता कहती है कि दासी होकर कुल ललनाओं की भाँति लाज का नाट्य करती है। इससे स्पष्ट है कि दासी को नारी भी नहीं समझा जा रहा था और न यह माना जा रहा था कि युवती दासी में यौवन सुलभ लज्जा का भाव होना चाहिए।

यशपाल ने 'दिव्या' में शासक वर्ग ही नहीं पूरे समाज को देखा परखा है। उच्च वर्ग मदिरा और विलाश में डूबा हुआ था लेकिन समाज का नीचला वर्ग शोषित पीड़ित था। तलवार बनाने वाला अपमानित जिंदगी जीता था और तलवार चलाने वाला अपमानित करने का अधिकारी था। नीचले तल के लोगों के जीवन में हाहाकार था। सामाजिक राजनीति और युद्ध से उनका कुछ लेना देना नहीं था। उनमें राजनीतिक सामाजिक राष्ट्रीय कर्त्तव्य के प्रति अवहेलना का भाव शोषण की ही प्रतिक्रिया है।

'दिव्या' में व्यापक ऐतिहासिक कालखंड अपनी द्वन्द्वात्मकता के साथ मूखर हो गया है। एक व्यवस्था को दबाकर जब दूसरी व्यवस्था आती है तो पहली व्यवस्था के मूल्य जड़ मूल से कभी खत्म नहीं होते। राजनीतिक अधिरचना के नीचे विभिन्न व्यवस्थाओं की मान्यताएँ सामंजस्य और टकराव की स्थिति में होती हैं। दिव्या में ईसा पूर्व की धार्मिक सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अपनाव और टकराव के द्वन्द्व के साथ उभरते है इस पृष्ठभूमि में ही यशपाल नारी जीवन की विडम्बनाओं को रेखांकित करते चलते हैं। यवन मिलिन्द के राजतंत्र में वागीश शर्मा धर्मस्थ थे। उनके देहांत के बाद उनके योग्य पुत्र देव शर्मा को मिलिन्द धर्मस्थ नियुक्त करता है। शासक है यवन और धर्मस्थ है वर्णाश्रम धर्म व्यवस्थावादी। निश्चय हीं यह सामंजस्य मूलक राज व्यवस्था है। देव शर्मा वर्णाश्रम धर्म नीति और यवन शासन नीति को मिलाकर अपनी न्याय व्यवस्था निर्मित करता है जो कि मिश्रित संस्कृति की उपज है। देव शर्मा का प्रासाद भी यदि देशी विदेशी संस्कृतियों का मिलन केन्द्र है तो इसके भी मिश्रित संस्कृति की धारणा ही काम कर रही है। देव शर्मा मानते हैं कि न्याय राजनीतिक व्यवस्था का अनुगामी होता है। वह स्वाय्यत, स्वंमभू और स्वतंत्र नही होता, सत्ता का मिजाज देखकर हीं न्याय नियम बनते है। देव शर्मा कहते हैं, -

''धर्मस्थान भी स्वयंभू और स्वतंत्र वस्तु नहीं वह केवल समाज की भावना और व्यवस्था की जिह्वा है। इतने समयपर्यन्त न्याय की व्यवस्था देते रहने से मैं यही समझ पाया हूँ कि न्याय व्यवस्थापक के अधीन है। तात् के समय पौरव वंश और उनके सामन्त गण के विचार और उनके अधिकारों और शक्ति की रक्षा का विधान हीं न्याय था। विजयी मिलिन्द के समय इन सबका का अधिकार च्युत हो जाना न्याय था। ..... फिर मद्र राज्य में तथागत के धर्म की भावना हीं न्याय हो गयी।'' - व्यवस्था के उठने गिरने से भी स्पष्ट है कि खत्म हुई व्यवस्था के मुल्य कभी खत्म नहीं होते, वे समाज के आधार तल पर हलचल करते हुए सामंजस्य और टकराव की स्थिति निर्मित करते हैं। पंडित चक्रधर वर्णाश्रमवादी है लेकिन दिव्या को दास बनाकर रखता है। वह स्वयं सामंती व्यवस्था में रहता है। लेकिन दास युग के सुविधाजनक मूल्यों को बदली हुयी व्यवस्था में भी अपनाए रहता है। यदि सामंती व्यवस्था में दास युग की प्रथाएँ चल रही हैं तो इसका मतलब है कि दोनों युग की मान्यताएँ सह-अस्तित्व में है।

यशपाल ने दिव्या में विभिन्न शासन व्यवस्थाओं के अंदरूनी सच को भी उजागर किया है। इन शासन व्यवस्थाओं के उठने गिरने से उन व्यवस्थाओं के मूल्य न तो समाज पर पूरी तरह छा जाते हैं और न समाज से पूरी तरह गायब हो जाता हैं। उनके बीज भी खत्म नहीं होते क्योंकि उनके पीछे विचारधारा होती है। पुष्य मित्र मगध का सेनापति था। वह सैन्य विद्रोह कर मगध का शासक बनता है तथा मगध में मगध के बौद्ध धर्म निदेशित शासन व्यवस्था को खत्म कर वर्णाश्रमवादी शासन व्यवस्था लाता है। इस व्यवस्था में बौद्धों दासों और नारियों के लिए सम्मान पूर्ण स्थान नहीं है। जाहिर है कि उसे शोषण और शासन का अधिकार है। केन्द्रस की राजतंत्रीय व्यवस्था में भी जनता उसी तरह दुखी है जिस तरह गणतंत्रीय व्यवस्था में। केन्द्रस की राजतंत्रीय व्यवस्था के बारे में एक मद्यप कहता है, ''आये दिन केन्द्रस के दस्यु तेरे मद के घटों को चूर्ण कर, तेरा मद पीकर तुझ पर ही अत्याचार करेंगे।'' गणतंत्र में भी जनता दुःखी और पीड़ित थी। एक दूसरा मद्यप् कहता है केन्द्रस से क्या भय गण के दो सौ राजुल्लों से एक राजा का शासन कहीं भला। सागल में पुनः धर्मराज मिलिन्द के समय की शांति आ जाएगी।'' राजतंत्र में तो एक ही व्यक्ति शासन और शोषण का अधिकारी होगा लेकिन गणतंत्र में तो जितने गण उतने ही दमन और शोषित। रचनाकार बताता है कि तंत्र बुरा नहीं होता वह बुरा बनता है तब जब शासक आत्म सेवा और स्वार्थ सिद्धि का आदर्श अपना लेता है। आत्म सेवा को आदर्श बनाने वाला शासक प्रजा पीड़क होता है। आत्मकेन्द्रिता सत्ता लुट-खसोट की नीति अपनाती है। उसमें राष्ट्र रक्षा का विवेक खत्म हो जाता है। देश पर युद्ध संकट के बादल हों और यदि जनता यह कहे कि किसके लिए युद्ध तो इसका एक ही अर्थ है कि शोषण और दमन ने राष्ट्रीय चेतना को तिरोहित कर दिया है।

## निष्कर्ष:

मनुष्य नियति की प्रवाह में बहता हुआ तिनका नहीं है। जब धर्म कर्मकांडी आधार लेकर सांस्कृतिक नियमों और मूल्यों को निर्धारित करता है तो सारे सवाल पाप पुण्य के विवेक पर केन्द्रित हो जाते हैं। जब भोग को तृष्णा और वैराग्य को तृणाक्षय समझा जाता है तो मायावाद और परलोकवाद का ही समर्थन होता है। जब धर्म इस लक्ष्य से भटक जाता है तो वह समाज के एक पक्ष का पोषक और दूसरे पक्ष का शोषक बन जाता है। धर्म जीवन के लिए है। यशपाल जी धर्म के जीवनवादी स्वरूप के पक्षधर हैं और इसलिए जीवनवाद से विमुख हो गए वर्णाश्रम धर्म और बौद्ध धर्म के अर्न्तविरोधों को यहाँ उजागर करते हैं। न वर्णाश्रम धर्म कर्म परक रह गया था और न बौद्ध धर्म समतामूलक एवं करूणा केन्द्रित। बौद्ध धर्म संघ दिव्या को शरण नहीं देता। उसके अनुसार संघ में नारी की शरणागति के लिए पिता, पति, एवं पुत्र की आज्ञा आवश्यक होती है। यदि नारी दासी है तो मालिक की आज्ञा आवश्यक है। जब दिव्या यह कहती है कि बुद्ध ने आम्रपाली को संघ में दीक्षित किया था तो संघ का प्रतिनिधि कहता है कि आम्रपाली वेश्या थी और वेश्या स्वतंत्र नारी है। इसका अर्थ है कि न तो वर्णाश्रमवादी समाज में और न हीं बौद्ध धर्म नियोजित समाज में नारी मुक्त नहीं है। उसे आत्मनिर्णय का अधिकार नहीं हैं । इस उपन्यास में पृथुसेन वर्णाश्रमवादी व्यवस्था के प्रतिकार में दास विद्रोह का प्रतीक बनकर उभरता है, तो दूसरी ओर रूद्रधीर दास शासन को खत्म कर वर्णाश्रम धर्म के पुर्नरूद्धारकर्त्ता के रूप ।

## सन्दर्भ


- यशपाल, दिव्या, लोकभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, २०१४
- निर्मल जैन, आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्याङ्कन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, २००४
- पद्मा पाटिल, प्रगतिशील यशपाल का "दिव्या" उपन्यास और मानव अधिकार का जन संघर्ष, कल सुनना मुझे ग्रन्थ, सं। डॉ .प्रदीप सक्सेना, प्रो .के .पी .सिंह अभिनंदन ग्रंथ प्रकाशन, अलीगढ़, २००९, अध्याय १२, पृ २५६ - २७२,